# गर्मियों के दिन

हिन्दी ADDA

कमलेश्वर

# गर्मियों के दिन

'चुंगी-दफ्तर खूब रँगा-चुँगा है । उसके फाटक पर इंद्रधनुषी आकार के बोर्ड लगे हुए हैं । सैयदअली पेंटर ने बड़े सधे हाथ से उन बोर्ड़ों को बनाया है । देखते-देखते शहर में बहुत-सी ऐसी दुकानें हो गई हैं, जिन पर साइनबोर्ड लटक गए हैं । साइनबोर्ड लगना यानी औकात का बढ़ना । बहुत दिन पहले जब दीनानाथ हलवाई की दूकान पर पहला साइनबोर्ड लगा था तो वहाँ दूध पीने वालों की संख्या एकाएक बढ़ गई थी । फिर बाढ़ आ गई, और नए-नए तरीके और बैलबूटे ईजाद किए गए । 'ॐ' या 'जयहिन्द' से शुरु करके 'एक बार अवश्य परीक्षा कीजिए' या 'मिलावट साबित करने वाले को सौ रुपया नगद इनाम' की मनुहारों या ललकारों पर लिखावट समाप्त होने लगी ।

चुंगी-दफ्तर का नाम तीन भाषाओं में लिखा है । चेयरमैंन साहब बड़े अक्किल के आदमी हैं, उनकी सूझ-बूझ का डंका बजता है, इसलिए हर साइनबोर्ड हिंदी, उर्दू और अंगरेज़ी में लिखा जाता है । दूर-दूर के नेता लोग भाषण देने आते हैं, देश-विदेश के लोग आगरे का ताजमहल देखकर पूरब की ओर जाते हुए यहाँ से गुज़रते हैं...उन पर असर पड़ता है, भाई । और फिर मौसम की बात - मेले-तमाशे के दिनों में हलवाइयों, जुलाई-अगस्त में किताब-कागज़ वालों, सहालग में कपड़े वालों और खराब मौसम में वैद्य-हकीमों के साइनबोर्डों पर नया रोगन चढ़ता है । शुद्ध देसी घी वाले सबसे अच्छे, जो छप्परों के भीतर दीवार पर गेरू या हिरमिजी से लिखकर काम चला लेते हैं । इसके बगैर काम नहीं चलता । अहमियत बताते हुए वैद्यजी ने कहा- "बगैर पोस्टर चिपकाए सिनेमा वालों का भी काम नहीं चलता । बड़े-बड़े शहरों में जाइए, मिट्टी का तेल बेचने वाले की दुकान पर साइनबोट मिल जाएगा। बड़ी ज़रूरी चीज़ है। बाल-बच्चों के नाम तक साइनबोट हैं, नहीं तो नाम रखने की जरूरत क्या है ? साइनबोट लगाके सुखदेव बाबू कंपौंडर से डॉक्टर हो गए, बेग लेके चलने लगे।"

पास बैठे रामचरन ने एक और नए चमत्कार की खबर दी-- ल उन्होंने बुधईवाला इक्का-घोड़ा खरीद लिया ...

-- हाँकेगा कौन ? -टीन की कुर्सी पर प्राणायाम की मुद्रा में बैठे पंडित ने पूछा।

-- ये सब जेब कतरने का तरीका है --वैद्यजी का ध्यान इक्के की तरफ अधिक था-- मरीज़ से किराया वसूल करेंगे। सईस को बख्शीश दिलाएंगे, बड़ शहरों के डॉक्टरों की तरह । इसी से पेशे की बदनामी होती है । पूछो, मरीज़ का इलाज करना है कि रोब-दाब दिखाना है। अंगरेज़ी आले लगातार मरीज़ की आधी जान पहले सुखा डालते हैं। आयुर्वेदी नब्ज़ देखना तो दूर, चेहरा देख के रोग बता दे ! इक्का-घोड़ा इसमें क्या करेगा ? थोड़े दिन बाद देखना, उनका सईस कंपौंडर हो जाएगा --कहते-कहते वैद्यजी बड़ी घिसी हुई हँसी में हँस पड़े । फिर बोले-- कौन क्या कहे भाई ? डॉक्टरी तो तमाशा बन गई है । वकील मुख्तार के लड़के डॉक्टर होने लगे ! खून और संस्कार से बात बनती है हाथ में जस आता है, वैद्य का बेटा वैद्य होता है । आधी विद्या लड़कपन में जड़ी-बुटियाँ कूटते-पीसते आ जाती है । तोला, माशा, रत्ती का ऐसा अंदाज़ हो जाता है कि औषधि अशुद्ध हो ही नहीं सकती है । औषधि का चमत्कार उसके बनाने की विधि में है । धन्वंतरि" वैद्यजी आगे कहने जा ही रहे थे कि एक आदमी को दुकान की ओर आते देख चुप हो गए, और बैठे हुए लोगों की ओर कुछ इस तरह देखने-गुनने लगे कि यह गप्प लड़ाने वाले फालतू आदमी न होकर उनके रोगी हों ।

आदमी के दुकान पर चढ़ते ही वैद्यजी ने भाँप लिया । कुंठित होकर उन्होंने उसे देखा और उदासीन हो गए । लेकिन दुनिया-दिखावा भी कुछ होता है । हो सकता है, कल यही आदमी बीमार पड़ जाए या इसके घर में किसी को रोग घेर ले । इसलिए अपना व्यवहार और पेशे की गरिमा चौकस रहना चाहिए । अपने को बटोरते हुए उन्होंने कहा, "कहो भाई, राजी-खुशी ।" उस आदमी ने जवाब देते हुए सीरे की एक कनस्टरिया सामने कर दी, "यह ठाकुर साहब ने रखवाई है । मंडी से लौटते हुए लेते जाएँगे । एक-डेढ़ बजे के करीब ।"

-- उस वक्त दुकान बंद रहेगी, --वैद्यजी ने व्यर्थ के काम से ऊबते हुए कहा-- हकीम-वैद्यों की दुकानें दिनभर नहीं खुली रहतीं । व्यापारी थोड़े ही हैं, भाई ! --पर फिर किसी अन्य दिन और अवसर की आशा ने जैसे ज़बरदस्ती कहलावाया- --खैर, उन्हें दिक्कत नहीं होगी, हम नहीं होंगे तो बगल वाली दुकान से उठा लें । मैं रखता जाऊँगा।

आदमी के जाते ही वैद्य जी बोले-- शराब-बंदी से क्या होता है ? जब से हुई तब से कच्ची शराब की भट्टियाँ घर-घर चालू हो गईं । सीरा घी के भाव बिकने लगा। और इन डॉक्टरों को क्या कहिए...इनकी दुकानें हौली बन गई हैं। लैसंस मिलता है दवा की तरह इस्तेमाल करने का, पर खुले आम जिंजर बिकता है। कहीं कुछ नहीं होता । हम भंग-अफीम की एक पुड़िया चाहें तो तफसील देनी पड़ती है।"

-- ज़िम्मेदारी की बात है --पंडित जी ने कहा।

-- अब ज़िम्मेदार वैद्य ही रह गए हैं। सबकी रजिस्टरी हो चुकी, भाई। ऐसे गैर-पंचकल्यानी जितने घुस आए थे, उनकी सफाई हो गई। अब जिसके पास रजिस्टरी होगी वही वैद्यक कर सकता है। चूरन वाले वैद्य बन बैठे थे...सब खतम हो गए । लखनऊ में सरकारी जाँच-पड़ताल के बाद सही मिली है....

वैद्य जी की बात में रस न लेते हुए पंडित उठ गए। वैद्यजी ने भीतर की तरफ कदम बढ़ाए, और औषधालय का बोर्ड लिखते हुए चंदर से बोले-- सफेदा गाढ़ा है बाबू, तारपीन मिला लो। --वे एक बोतल उठा लाए जिस पर अशोकारिष्ट का लेबल गला था।

इसी तरह न जाने किन-किन औषधियों की शरीर रूपी बोतलों में किस-किस पदार्थ की आत्मा भरी है। सामने की अकेली अलमारी में बड़ी-बड़ी बोतलें रखी है; जिन पर तरह-तरह के अरिष्टों और आसवों के नाम चिपके हैं। सिर्फ़ पहली कतार में ये

शीशियाँ खड़ी हैं...उनके पीछे ज़रूरत का और सामान है। सामने की मेज़ पर सफेद शीशियों की एक पंक्ति है, जिसमें कुछ स्वादिष्ट चूरन... लवण-भास्कर आदि है, बाकी में जो कुछ भरा है उसे केवल वैद्यजी जानते हैं।

तारपीन का तेल मिलाकर चंदर आगे लिखने लगा- 'प्रो. कविराज नित्यानंद तिवारी' ऊपर की पंक्ति 'श्री धन्वंतरि औषधालय' स्वयं वैद्यजी लिख चुके थे | सफेदे के वे अच्छर ऐसे लग रहे थे जैसे रुई के फाहे चिपका दिए हों | ऊपर जगह खाली देखकर बैद्यजी बोले, "बाबू, ऊपर जयहिंद लिख देना और यह जो जगह बच रही है, इसमें एक ओर द्राक्षासव की बोतल, दूसरी ओर खरल की तसवीर...आर्ट हमारे पास मिडिल तक था लेकिन यह तो हाथ सधने की बात है।"

चंदर कुछ ऊँघ रहा था | खामखा पकड़ गया। लिखावट अच्छी हो का यह पुरस्कार उसकी समझ नहीं आ रहा था। बोला, "किसी पेंटर से बनवाते ..अच्छा-खासा लिख देता, वो बात नहीं आएगी...अपना पसीना पोंछते हुए उसने कूची नीचे रख दी।

-- पाँच रुपए माँगता था बाबू...दो लाइनों के पाँच रुपए ! अब अपनी मेहनत के साथ यह साइनबोर्ड दस-बारह आने का पड़ा | ये रंग एक मरीज़ दे गया। बिजली कंपनी का पेंटर बदहज़मी से परेशान था | दो खुराकें बनाकर दे दीं, पैसे नहीं लिए | सो वह दो-तीन रंग और थोड़ी-सी बार्निश दे गया। दो बक्से रँग गए ..यह बोट बन गया और अकाध कुर्सी रँग जाएगी...तुम बस इतना लिख दो, लाल रंग का शेड हम देते रहेंगे...हाशिया तिरंगा खिलेगा ?" वैद्यजी ने पूछा और स्वयं स्वीकृति भी दे दी।

चंदर गर्मी से परेशान था। जैसे-जैसे दोपहरी नज़दीक आती जा रही थी, सड़क पर धूल और लू का ज़ोर बढ़ता जा रहा था, मुलाहिज़े में चंदर मना नहीं कर पाया। पंखे से अपनी पीठ खुजलाते हुए बैद्यजी ने उजरत के काम वाले , पटवारियों के बड़े-बड़े रजिस्टर निकालकर फैलाना शुरू किए |

सूरज की तपिश से बचने के लिए दुकान का एक किवाड़ा भेड़कर बैद्यजी खाली रजिस्टरों पर खसरा-खतौनियों से नकल करने लगे। चंदर ने अपना पिंड छुड़ाने के लिए पूछा,"ये सब क्या है वैद्यजी ?"

वैद्य जी का चेहरा उतर गया, बोले,"खाली बैठने से अच्छा है कुछ काम किया जाए, नए लेखपालों को काम-धाम आता नहीं, रोज़ कानूनगो या नायब साहब से झाड़ें पड़ती हैं... झक मारके उन लोगों को यह काम उजरत पर कराना पड़ता है। उब पुराने घाघ पटवारी कहाँ रहे, जिनके पेट में गँवई कानून बसता था। रोटियाँ छिन गईं बेचारों की;

लेकिन सही पूछो तो अब भी सारा काम पुराने पटवारी ही ढो रहे हैं। नए लेखपालों की तनख्वाह का सारा रूपया इसी उजरत में निकल जाता है। पेट उनका भी है...तिया-पाँचा करके किसानों से निकाल लाते हैं। लाएँ न तो खाएँ क्या। दो-तीन लेखपाल अपने हैं, उन्हीं से कभी-कभार हलका-भारी काम मिल जाता है। नकल का काम, रजिस्टर भरते हैं।

बाहर सड़क वीरान होती जा रही थी। दफ्तर के बाबू लोग जा चुके थे। सामने चुंगी में खस की टट्टियों पर छिड़काव शुरु हो गया। दूर हरहराते पीपल का शोर लू के साथ आ रहा था। तभी एक आदमी ने किवाड़ से भीतर झाँका। वैद्यजी की बात, जो शायद क्षण-दो क्षण बाद दर्द से बोझिल हो जाती, रुक गई। उनकी निगाह ने आदमी को पहचाना और वे सतर्क हो गए। फौरन बोले, "एक बोट आगरा से बनवाया है, जब तक नहीं आता, इसी से काम चलेगा; फुर्सत कहाँ मिलती है जो इस सब में सिर खपाएँ....." और एकदम व्यस्त होते हुए उन्होंने उस आदमी से प्रश्न किया, "कहो भाई, क्या बात है ?"

--डाकदरी सरटीफिकेट चाहिए.... कोसमा टेशन पर खलासी हैंगे साब।" रेलवे की नीली वर्दी पहने वह खलासी बोला।

उसकी ज़रुरत का पूरा अंदाज़ करते हुए वैद्यजी बोले, "हाँ, किस तारीख से कब तक का चाहिए।"

-- पंद्रह दिन पहले आए थे साब, सात दिन को और चाहिए।"

कुछ हिसाब जोड़कर वैद्यजी बोले, "देखो भाई, सर्टीफिकेट पक्का करके देंगे, सरकार का रजिस्टर नंबर देंगे, रुपैया चार लगेंगे।" वैद्यजी ने जैसे खुट चार रुपए पर उसके भड़क जाने का अहसास करते हुए कहा, "अगर पिछला न लो तो दो रुपये में काम चल जाएगा...."

खलासी निराश हो गया। लेकिन उसकी निराशा से अधिक गहन हताशा वैद्यजी के पसीने से नम मुख पर व्याप गई। बड़े निरपेक्ष भाव से खलासी बोला, "सोबरन सिंह ने आपके पास भेजा था।" उसके कहने से कुछ ऐसा लगा जैसे यह उसका काम न होकर सोबरन सिंह का काम हो। पर वैद्यजी के हाथ नब्ज़ आ गई, बोले, "वो हम पहले ही समझ रहे थे। बगैर जान-पहचान के हम देते भी नहीं, इज़्ज़त का सवाल है। हमें क्या मालूम तुम कहाँ रहे, क्या करते रहे ? अब सोचने की बात है.... विश्वास पर जोखिम उठा लेंगे..... पंद्रह दिन पहले से तुम्हारा नाम रजिस्टर में चढ़ाएँगे, रोग

लिखेंगे... हर तारीख पर नाम चढ़ाएँगे तब कहीं काम बनेगा। ऐसे घर की खेती नहीं है..." कहते-कहते उन्होंने चंदर की ओर मदद के लिए ताका। चंदर ने साथ दिया, "अब उन्हें क्या पता कि तुम बीमार रहे कि डाका डालते रहे... सरकारी मामला है....."

-- पाँच से कम में दुनिया-छोर का डॉक्टर नहीं दे सकता....." कहते-कहते वैद्यजी ने सामने रखा लेखपाल वाला रजिस्टर खिसकाते हुए जोश से कहा, "अरे, दम मारने को फुर्सत नहीं है। ये देखो, देखते हो नाम..... । एक-एक रोगी का नाम, मर्ज़, आमदनी.... उन्हीं में तुम्हारा नाम चढ़ाना पड़ेगा। अब बताओ कि मरीजों को देखना ज़्यादा ज़रुरी है कि दो-चार रुपए के लिए सर्टीफिकेट देकर इस सरकारी पचड़े में फँसना।" कहते हुए उन्होंने तहसील वाला रजिस्टर एकदम बंद करके सामने से हटा दिया और केवल उपकार कर सकने के लिए तैयार होने जैसी मुद्रा बनाकर कलम से कान करोदने लगे।

रेलवे का खलासी एक मिनट तक बैठा कुछ सोचता रहा। और वैद्यजी को सिर झुकाए अपने काम में मशगूल देख दुकान से नीचे उतर गया। एकदम वैद्यजी ने अपनी गलती महसूस की, लगा उन्होंने बात गलत जगह तोड़ दी और ऐसी तोड़ी कि टूट ही गई। एकाएक कुछ समझ में न आया, तो उसे पुकारकर बोले, "अरे सुनो, ठाकुर सोबरन सिंह से हमारी जैरामजी की कह देना....उनके बाल-बच्चे तो राजी खुशी है ?"

-- हाँ सब ठीक-ठाक हैं।" रुककर खलासी ने कहा। उसे सुनाते हुए वैद्यजी चंदर से बोले, "दस गाँव-शहर के ठाकुर सोबरन सिंह इलाज के लिए यहीं आते हैं। भई, उनके लिए हम भी हमेशा हाज़िर रहे......" चंदर ने बोर्ड पर आखिरी अक्षर समाप्त करते हुए पूछा, "चला गया"

-- लौट-फिर के आएगा... --वैद्य जी ने जैसे अपने को समझाया, पर उसके वापस आने की अनिवार्यता पर विश्वास करते हुए बोले-- गँवई गाँव के वैद्य और वकील एक ही होते हैं। सोबरन सिंह ने अगर हमारा नाम उसे बताया है तो ज़रुर वापस आएगा... गाँव वालों की मुर्री ज़रा मुश्किल से खुलती है। कहीं बैठके सोचे-समझेगा, तब आएगा...

-- और कहीं से ले लिया, तो? --चंदर ने कहा तो वैद्य जी ने बात काट दी-- नहीं, नहीं बाबू। --कहते हुए उन्होंने बोर्ड की ओर देखा और प्रशंसा से भरकर बोले-- वाह भाई चंदर बाबू! साइनबोट जँच गया....काम चलेगा। ये पाँच रुपए पेंटर को देकर मरीजों से वसूल करना पड़ता। इक्का-घोड़ा और ये खर्चा! बात एक है। चाहे नाक सामने से पकड़ लो, चाहे घुमाकर। सैयदअली के हाथ का लिखा बोट रोगियों को चंगा तो कर

नहीं देता। अपनी-अपनी समझ की बात है। --कहते हुए वे धीरे से हँस पड़े। पता नहीं, वले अपनी बात समझकर अपने पर हँसे थे या दूसरों पर।

तभी एक आदमी ने प्रवेश किया। सहसा लगा कि खलासी आ गया। पर वह पांडु रोगी था। देखते ही वैद्यजी के मुख पर संतोष चमक आया। वे भीतर गए। एक तावीज़ लाते हुए बोले, "अब इसका असर देखो। बीस-पच्चीस रोज़ में इसका चमत्कार दिखाई पड़ेगा।" पांडु-रोगी की बाँह में तावीज़ बाँधकर और उसके कुछ आने पैसे जेब में डालकर वे गंभीर होकर बैठ गए। रोगी चला गया तो बोले, "यह विद्या भी हमारे पिताजी के पास थी। उनकी लिखी पुस्तकें पड़ी हैं... बहुत सोचता हूँ, उन्हें फिर से नकल कर लूँ..... बड़े अनुभव की बातें हैं। विश्वास की बात है, बाबू! एक चुटकी धूल से आदमी चंगा हो सकता है। होम्योपैथिक और भला क्या है ? एक चुटकी शक्कर। जिस पर विश्वास जम जाए, बस।"

चंदर ने चलते हुए कहा-- एब तो औषधालय बंद करने का समय हो गया, खाना खाने नहीं जाइएगा ?

-- तुम चलो, हम दम-पाँच मिनट बाद आएँगे। --वैद्यजी ने तहसील वाला काम अपने आगे सरका लिया। दुकान का दरवाज़ा भटखुला करके बैठ गए। बाहर धूप की ओर देखकर दृष्टि चौंधिया जाती थी।

बगल वाले दुकानदार बच्चनलाल ने दुकान बंद करके, घर जाते हुए वैद्यजी की दुकान खुली देखकर पूछा-- आप खाना खाने नहीं गए...

-- हाँ, ऐसे ही एक ज़रुरी काम है। अभी थोड़ी देर में चले जाएँगे। --वैद्य जी ने कहा और ज़मीन पर चटाई बिछाई; रजिस्टर मेज़ से उठाकर नीचे फैला लिए। लेकिन गर्मी तो गर्मी... पसीना थमता ही न था। रह-रहकर पंखा झलते, फिर नकल करने लगते। कुछ देर मन मारकर काम किया पर हिम्मत छूट गई। उठकर पुरानी धूल पड़ी शीशियाँ झाड़ने लगे। उन्हें लाइन से लगाया। लेकिन गर्मी की दोपहर.... समय स्थिर लगता था। एक बार उन्होंने किवाड़ों के बीच से मुँह निकालकर सड़क की ओर निहारा। एकाध लोग नज़र आए। उन आते-जाते लोगों की उपस्थिति से बड़ा सहारा मिल गया। भीतर आए, बोर्ड का तार सीधा किया और दुकान ने सामने लटका दिया। धन्वंतरि औषधालय का बोर्ड दुकान की गरदन में तावीज़ की तरह लटक गया ए।

कुछ समय और बीता। आखिर उन्होंने हिम्मत की। एक लोटा पानी पिया और जाँघों तक धोती सरका कर मुस्तैदी से काम में जूट गए। बाहर कुछ आहट हुई। चिंता से उन्होंने देखा।

-- आज आराम करने नहीं गए वैद्य जी। --घर जाते हुए जान-पहचान के दुकानदार ने पूछा।

-- बस जाने की सोच रहा हूँ... कुछ काम पसर गया था, सोचा, करता चलूँ... -कहकर वैद्य जी दीवार से पीठ टिका कर बैठ गए। कुरता उतारकर एक ओर रख दिया। इकहरी छत की दुकान आँवे-सी तप रही थी। वैद्यजी की आँखें बुरी तरह नींद से बोझिल हो रही थीं। एक झपकी आ गई....कुछ समय ज़रुर बीत गया था। नहीं रहा गया तो रजिस्टरों का तकिया बनाकर उन्होंने पीठ सीधी की। पर नींद....आती और चली जाती, न जाने क्या हो गया था।

सहसा एक आहट ने उन्हें चौंका दिया। आँखें खोलते हुए वे उठकर बैठ गए। बच्चनलाल दोपहर बिताकर वापस आ गया था।

-- अरे, आज आप अभी तक गए ही नहीं... --उसने कहा।

वैद्य जी ज़ोर-ज़ोर से पंखा झलने लगे। बच्चनलाल ने दुकान से उतरते हुए पूछा--किसी का इंतज़ार है क्या?

-- हाँ, एक मरीज़ आने को कह गया था... अभी तक आया नहीं --वैद्य जी ने बच्चनलाल को जाते देखा तो बात बीच में ही तोड़कर चुप हो गए और अपना पसीना पोंछने लगे।

https://www.hindiadda.com/garmiyon-ke-din/